हरिऔध सतसई

सतसईकार

साहित्य-वाचस्पति, कविसम्राट्

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

श्री वेणीमाधव शर्मा

प्रकाशक.........

अखिल भारतीय विक्रम परिषद,

'हरिऔध' प्रकाशन-मन्दिर,

काशी

प्रथमावृत्ति] १९४७ [मूल्य २।)

प्राप्ति स्थान
'हरिऔध' प्रकाशन-मन्दिर
६३।४१, उत्तर बेनिया,
काशी
हिन्दी साहित्य कुटीर, काशी
पुस्तक भवन, ज्ञानवापी,
काशी

मुद्रक
दुर्गादत्त त्रिपाठी
'सन्मार्ग' प्रेस
काशी

आमुख

धार्मिक जगत में दुर्गासप्तशती ने अपने आध्यात्मिक महत्व के कारण जो प्रतिष्ठा और प्रभाव उत्पन्न किया उसकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर साहित्य जगत में गाथा सप्तशती जैसे मुक्तक काव्य-ग्रन्थों ने भी सहृदय पाठकों को ब्रह्मानन्द सहोदर काव्य रस का आनन्द दिया।

हिन्दी साहित्य के परम विचक्षण कवियों ने इस परिपाटी का पालन करते हुए जो अनेक सतसइयाँ लिखीं उनमें जहाँ एक ओर शुद्ध शृंगार की रसमयी रचनाएँ थी वहीं दूसरी ओर नीति का भी शिक्षण था और प्रायः सभी कवियों ने नीति के शिक्षण के लिए ही सतसई की प्रणाली को अपनाया था। वृन्द रहीम जैसे नीतिकारों के साथ गोस्वामी तुलसीदासजी की दोहावली भी भक्ति का पाठ लेकर आयी किन्तु संख्या की विषमता के कारण वह दोहावली बनी रह गयी, सतसई न हो पायी, किन्तु शृंगार के क्षेत्र में बिहारी सतसई ने जो यश कमाया उसने गाथा सप्तशती की रागमयी परंपरा को फिर जीवित कर दिया और उसकी देखादेखी इधर के कवियों ने भी अपनी लेखनी को प्रोत्साहन देकर सतसई की रचना में प्रवृत्त किया।

'हरिऔध'जी की विलक्षण कवि-प्रतिभा इस दिशा में भी गतिशील हुई और जहाँ उन्होंने साहित्य रचना के सब अंगों की पुष्टि की और हिन्दी की सभी उप भाषाओं में प्रौढ़ साहित्य की सृष्टि की वहाँ उन्होंने सतसई की चली आती हुई परंपरा का भी निर्वाह किया और उसी प्रयास का सुफल है 'हरिऔध सतसई'। हरिऔधजी की भाषा के विषय में कुछ कहना या उनकी कविता के लिए कसौटी उपस्थित करना छोटे मुँह बड़ी बात है इसलिए इस युग के महा-कवि कविसम्राट् 'हरिऔध'जी की अन्तिम रचना 'हरिऔध सतसई' श्रद्धा के साथ प्रकाशित की जा रही है।

तारतम्य

जो कुछ है वह है नहीं,
मर्यादा अनुकूल।
अर्पण सादर है प्रभो!
साग पात फल मूल।

—हरिऔध

श्रीहरिः

हरिऔध-सतसई

विनीत विनय

हो मन भावुक भूति में,
भक्ति भाव भरपूर।
बन तमारि करुणानिधे!
करो हृदय तम दूर॥

गौरव से गाता रहे,
सउमग गुण गोविन्द।
पावन पद अरविन्द का,
मन बन मत्त मिलिन्द॥

गूँज गूँज गाता नहीं,
क्यों गौरव गोविन्द।
मन तू क्यों बनता नहीं,
प्रभु पद पद्म मिलिन्द॥

विविध ताप उपताप की,
मायिकता कर दूर।
घन तन प्रभु पद पद्म का,
है मन मत्त मयूर।

जो बरसाता है सुधा,
वसुधा पर सब ओर।
उसके वदन मयंक का,
मन बन चुका चकोर।

पावन होता है पतित,
पावन पद को पूज।
होती है भव में सदा,
यह पावनतम गूँज।

आँसू जब है बरसता,
लोचन बन बेहाल।
करुणा सागर उमड़ता,
मिलता है उसकाल।

दीनबन्धु हो हे प्रभो!
दया सिधु हो ख्यात।
पीड़ित क्यों न हुए सुने,
उत्पीड़न की बात।

तड़प रहा हूँ मीन सम,
होके वारि विहीन।
अहह हुआ करुणायतन,
क्यों करुणा से हीन।

मेरे ऐसा कौन है,
इस दुनियाँ में दीन।
दयानिकेतन क्यों हुआ,
दयालुता से हीन।

मेरे ऐसा दूसरा,
होगा कौन अनाथ।
भूले मुझको किसलिए,
भोले भाले नाथ।

दौड़ो गज सी है दशा-
हुई पकड़ लो हाथ।
पाप ग्राह से हूँ ग्रसित,
त्रसित सशंकित नाथ।

पाप ताप उत्ताप से,
तप्ताक्रमित नितान्त।
हूँ अशान्त अतिशय दुखित,
दौड़ो कमलाकान्त।

अधम पतित भी हूँ प्रभो!
मुझको करो सनाथ।
बड़ी बात मैं क्यों कहूँ,
छोटे मुख से नाथ।

तब क्यों प्रभु मैं दुख सहूँ
जब तुम हो सुखकन्द।
हो आनन्दनिधान दो
मुझको भी आनन्द।

तुमने तारे है पतित,
करके कृपा अपार।
उसी कृपा का हे प्रभो,
मुझको है आधार।

तार सको तो हे प्रभो!
लो तुम हमको तार।
मुझसा पतित न अन्य है,
मैं हूँ पापागार।

उसकी सकल विभूति को,
देखें आँख पसार।
भूले भी संसार को,
कहें न हम निस्सार।

पड़ प्रपंच में मैं नहीं।
बनूं पाप से पीन।
मेरे मन को मथ सके,
मन्मथ प्रभो कभी न।

आखें हैं पथरा गयीं,
पढ़ पढ़ नाना ग्रंथ।
जिससे प्रभु का प्राप्ति हो,
मिला नहीं वह पंथ।

मानस बनता ही रहे,
पूत कृत्य का क्षेत्र।
प्रभु पद पंकज के बनें,
चंचरीक ममनेत्र।

कान कान वह है नहीं,
है वह काठ समान।
जो सुन पाता है नहीं,
गौरवमय गुणगान।

कलप रहा हूँ और हूँ,
अतिशय दुर्बल दीन।
विनय कान करते नहीं,
क्या हो कान विहीन?

गुणगान

गणपति गौरीपति गिरा,
गोपति गुरु गोविन्द।
गुण गाओ वन्दन करो,
पावन पद अरविन्द।

कहती है आनन्द ध्वनि,
स्वर्गिक स्वर में गूँज।
सिद्धि मिलेगी गज-वदन,
पद पंकज को पूज।

सकल मंजु मंगल सदन,
कदन अमंगल मूल।
एक रदन करिवर वदन,
सदा रहें अनुकूल।

आराधन करते करें,
बाधायें सब दूर।
दयासिंधु सिंधुर बदन,
आरंजित सिन्दूर।

विमुख विविध बाधा करें,
करिवरमुख दिन रात।
दिन दिन बनती ही रहे,
बना बनी की बात।

जिस मुरलीका नाद सुन ,
बने मुग्ध बहु वन्य ।
उस मुरलीधर अधर को ,
क्यों न कहें हम धन्य ?

मूर्तिमान प्रतिपत्ति हैं ,
है उपपत्ति प्रसाद ।
अधर धरी मन मोहिनी ,
मोहन मुरली नाद ।

अधर सुधा की माधुरी ,
से बसुधातल सींच ।
मोहन मुरली सरस रस ,
देती रही उलीच ।

पूजे जगती में गये ,
जिनके पग जलजात ।
उन मोहन की मुरलिका ,
है भव में विख्यात ।

हरि मुरली ध्वनि सुने जब ,
होता ध्वनित दिगंत ।
झंकृत होता उस समय ,
भव हृतंत्री तंत ।

जब मनमोहन मुरलिका ,
का होता था नाद ।
अज पशु पक्षी श्रवणतक ,
पाते थे आस्वाद ।

क्यों नहिं होती स्वरित हो ,
व्रज मण्डल में व्याप्त ।
मन मोहन की मुरलिका ,
दिव्य अधर कर प्राप्त ।

हरि मुरली होती न जो ,
दिव्य कला में लीन ।
होकर छिद्रवती कलित ,
कीर्तिवती बनता न ।

जो मोहन मृदु अधर के ,
होती नहीं अधीन ।
तो जड़ वंसी बांस की ,
मोहकता बनती न ।

सारी बाधायें हरें ,
राधा नयनानन्द ।
वृन्दारक वन्दित चरण ।
श्री वृन्दावन चंद ।

मोहित होते हैं नयन ,
देख ललित तम ओक ।
विकसित वारिज वदनकी,
दशनावली विलोक ।

बनते हैं बुध विबुधवर ,
महामन्द मति मान ।
कर गौरविता गिरा का ,
गौरव मय गुण गान ।

विवुध वृन्द आराधिता,
बुध सेविता त्रिकाल।
जय वीणा पुस्तकवती,
हंस विलसती बाल।

है लोहे के लिए वह,
पारस का संस्पर्श।
दीनबन्धु की बन्धुता,
का है बर आदर्श।

द्रवण शीलता से लसित,
है दयालुता देह।
है केतन कल कीर्तिका,
कृपा निकेतन स्नेह।

खोजे खोजी को मिला,
क्या हिन्दू क्या जैन।
पत्ता पत्ता क्या हमें,
पता बताता है न।

रंग रंग में जब रहें,
सकें रंग क्यों भूल।
देख उसी की ही फबन,
फूल रहे हैं फूल।

क्या उसकी है सोहती,
नहीं नयन में सोत?
क्या जग में है जागती,
नहीं उसी की जोत?

पूजन योग जिसे कहें,
पूजित जन बन दास।
उसे नहीं जो पूजते,
तो क्यों पूजे आस।

आवभगत उसका करें,
पूजें पाँव सचाव।
सब से ऊँचा जो रहा,
रख कर ऊँचे भाव।

बिना बीज क्यों बेलि हो,
बिना तिलों क्यों तेल।
किसी खेलाड़ी के बिना,
है न जगत का खेल।

क्या निर्गुण है ? है भला,
किसको निर्गुण ज्ञान।
गुणवाले जो कर सकें,
करें सगुण गुणगान।

चित भीतर ही है नहीं,
जो चित रहे सचेत।
कला दिखाता क्या नहीं,
बाहर कला निकेत।

विपुल बीज अंकुरित हो,
अंकुर सकल समेत।
हैं हरि पता बता रहे,
हरे भरे सब खेत।

जोत नहीं तम में मिली ,
लाखोंबार टटोल ।
भेद भला कैसे खुले ,
सके न आखें खोल ।

बनें सकल मंगल सदन ,
सदा रहें अनुकूल ।
एक रदन करिवर वदन ,
कदन अमंगल मूल ।

मंगलमय मंगल करें ,
ढरें भवानीनन्द ।
सारी बाधायें हरें ,
राधा नयनानन्द ।

सरस बने मंगल अवनि,
बरसे प्रेम प्रमोद ।
उलहे सुरुचि रुचिर लता,
विकसे बेलि विनोद ।

जन-जनबहु पुलकित बनें,
घर घर हो आनन्द ।
महि को मंगलमय करें ,
रविकुल कैरवचंद ।

भूख नहीं है ऊख की ,
नहीं सुधा से काम ।
मीठी मीठी वस्तु से ,
है मीठा हरिनाम ।

नवरस ऐसा है नहीं,
षटरस होगा छीन।
जो न रामरस चखा तो,
है रसना रस हीन।

प्रभु जी में होता न जो,
दीन जनों का प्यार।
पाते न सुदामा-चार फल
देकर चावल चार।

जो न रीझते रीझने-
वाले शुचि रुचि हेर।
शवरी की मीठी न तो,
लगती जूठी बेर।

बँधे प्रेम की डोर में,
कर न सके अभिमान।
तज मेवे हरि ने किया,
विदुर साग सम्मान।

जो कुछ है वह है नहीं,
मर्यादा अनुकूल।
अर्पण सादर हैं प्रभो,
साग-पात फल मूल।

मंगलमय होता रहे,
यह मंगलमय काल।
करें अमंगल दूर सब,
मंगलायतन लाल।

कुशकुन दुरें उलूकसम ,
तज मंगलमय देश ।
सकल अमंगल तम दलें ,
द्विजकुल कमल दिनेश ।

बाधित वसुधा को करें ,
हर बाधा का अंश ।
विबुध वृन्द सेवित चरण,
बंदनीय द्विज वंश ।

करें गौरवित जाति को ,
कर गौरव पर गौर ।
रखें लाज सिरमौर की ,
विप्र वंश सिरमौर ।

पुरजनपरिजनसुखित हों,
लहें समागत मोद ।
पा अवनी कमनीयता ,
उलहे बेलि विनोद ।

बसे अविकसित चित्त में,
अमित उमंग उछाह ।
बहे अपावन हृदय में ,
पावन प्रेम - प्रवाह ।

सुमुख सुमुखता वायु से ,
टले अमोद पयोद ।
विलसित भाल मयंक से ,
विकसे कुमुद विनोद ।

गुरु-गौरव

देव भाव मन में भरे,
दल अदेव अहमेव।
गिरि गुरुता से हैं अधिक,
गौरव में गुरु देव।

पाप पुंज को पीस गुरु,
विविध ताप कर दूर!
हैं भरते उर-भवन में,
भक्ति भाव भर पूर।

महिमामय मतिमानता,
मानस मंजु मराल।
है कलिकाल कलुष वदन,
शमन जगत जंजाल।

विविध मोह माया रहित,
कदन मदन अहमेव।
हैं बहु गौरव गौरवित,
गुरुतामय गुरु देव।

हर सारा अज्ञान तम,
बन भव सागर पोत।
गुरु तज उर में ज्ञानकी,
कौन जगावे जोत।

जन रंजन होता नहीं,
कर गंजन तम-मान।
दृग-रुज भंजन जो न गुरु,
करते अंजन दान।

पाता जो न यथा समय,
गुरुवर तप का ताब।
होता होते आब के,
आब हीन पंजाब।

गुरुवर की गुरुता प्रगति,
उनकी शुचि अनुभूति।
दिव्य भाव से है भरित,
है वह वेद विभूति।

कौन बिना गुरु के हरे,
गौरव जनित गरूर।
करे समल मानस विमल,
बने सूर को सूर।

बिना खुली जन आंख को,
खोल न पाता आन।
जानकार गुरु के बिना,
रहता जगत अजान।

वाद क्यों न गुरु से करें,
चेले कलि अनुरूप।
रीति न जानें विनय की,
हैं अविनय के रूप।

गुरु सेवा करते रहें,
गहें न उनकी भूल।
जो न चढ़ायें फूल हम,
तो न उड़ायें धूल।

होता है सिर को नवा,
नर जग में सिरमौर।
बनता है वन्दन किये,
वन्दनीय सब ठौर।

गुरुपग तो पूजे नहीं,
जी में जंग उमंग।
विद्या क्यों विद्या बने,
किये अविद्या संग।

लाल लाल आँखें करें,
गुरु को समझें काल।
तदपि लालसा है बनें—
हम माई के लाल।

विविध ज्ञान आधार है।
है महनीय महान।
सकल लोक सर्वस्व है,
गुरुवर का गुणगान।

———

माता-पिता-महत्व

जो महि में होती नहीं,
माता ममता भौन।
ललक बिठाता पुत्र को,
नयन पलक पर कौन ?

सुत पाता है पूत पद,
पाप पुंज को भूँज।
माता पद पंकज परस,
पिता कमल पद पूज।

वे जन लोचन के लिए,
सके न बन शशि दूज।
पूजन योग न जो बने,
माता के पग पूज।

उसकी महिमा कथन में,
मति होती है मौन।
जग में जीवन दायिनी,
माता सम है कौन।

छाती से कढ़ता न क्यों,
तब बन पय की धार।
जब माता उर में उमग,
नहीं समाता प्यार।

जो माता होती नहीं,
महा मोह की मूर्ति।
तो पावन तम प्रीति की,
कैसे होती पूर्ति।

है प्रतिपालन क्रिया को,
उससे होती पूर्ति।
है महती महिमावती;
महि में माता मूर्ति।

चित्त समादर सहित है,
करता सदा कबूल।
माता नाता है सकल,
नाताओं का मूल।

उसका जीवन स्नेह परि-
पूरित चित है धन्य।
माता सी त्राता न है,
अवनीतल में अन्य।

मा उर में ही है हुआ,
करता वह अवरोह।
जिससे प्राय: द्रोह भी,
बन जाता है मोह।

भव उर को देखा ग्रहण,
कर आलोचक नीति।
है माँ प्रीति प्रतीति सी,
किसकी प्रीति प्रतीति।

उसके ऐसा है नहीं,
अपनेपन में आन।
पिता आप ही भवन में,
है अपना उपमान।

यदि माता महि मध्य है,
सरसा सुधा समान।
कामधेनु पय तो पिता—
का होगा उपमान।

महती प्रीति पुनीत की,
यदि माता है मूर्ति।
तो पालन प्रक्रिया की,
पितृ देव हैं पूर्ति।

मिले न खोजे भी कहीं,
खोजा सकल जहान।
माता सी ममतामयी,
पाता पिता समान।

कौन बरसता स्नेह पर,
निशि दिन मेह सनेह।
बिना पिता पालन किये,
पलती किसकी देह।

सुर सरिता के सलिल सम
यदि माता है पूत।
तो निज आलय के पिता,
हैं पुनीत पुरहूत।

देवी जैसी माँ अगर,
है दिव्यता निकेत।
किसी देव जैसे पिता,
तो हैं दीप्ति उपेत।

जो होते भू में नहीं,
पिता प्यार के भौन।
ललक बिठाता पूत को,
नयन पलक पर कौन।

जो होवे ममता मयी,
प्रीति पिता की भौन।
प्यारा क्या सुत को कहे,
तो दृग तारा कौन।

ललक ललक होता न जो,
पिता लालसा लीन।
बनता सुत बर जोर तो,
कोर कलेजे की न।

माता है सुत के लिए,
यदि गौरव आगार।
तो होता सुत से पिता—
का भी है सत्कार।

———

शिख-नख

किसके नयनों ने नहीं,
ली उसकी छवि लोक।
कौन न ललका आलुला-
यित कुन्तल अवलोक।

कम्पित होता ही नहीं,
वीर अकम्पित काय।
सिर पर आये बला, या,
बाल बाल बिन जाय।

ललित ललित तम हैं बने,
मिले मनोरम ओक।
कान्तकपोललसितकलित,
कुन्तल लो अवलोक।

कैसे उसे न जन कहें,
जान विहीन अजान।
बाल-बाल जो बिन गये,
बनता है बलवान।

हैं तन छबि के सिर धरे,
बदन लसित बर वेश।
किसी छबीले अंक में,
छुटे छरहरे केश।

है सित केशों के सहित,
सात्विकता संयोग।
क्यों काले कच के लिए,
लालायित हैं लोग।

पढ़ न सका कोई कभी,
बहु दृग से भी देख।
किसी लेखनी से लिखित,
जन लिलार का लेख।

सुन्दर भाल विशाल का,
है मंजुल शृंगार।
है चन्दन का तिलक जग,
अभिनन्दन आधार।

चन्दन भाल विशाल का,
है बहु भाव उपेत।
रजोगुणी है लाल औ-
सतोगुणी है श्वेत।

हो जाता है चौगुना,
चारु चित्त का चाव।
भाल विशाल-विशालता,
का अवलोके भाव।

बन जाता है बहु विकस,
प्रभा निकेतन इन्दु।
आभावाला भाल पा-
गये ज्योति वर बिन्दु।

कभी बने प्रतिकूल क्यों,
रहें सदा अनुकूल।
बड़ी भूल होगी अगर,
भाल न बरसे फूल।

युगल विलोचन मंजुता,
मोहकताका अंक।
कुंठित करता है सदा,
भृकुटी .कुटिल. कलंक।

मानवता की मूर्ति को,
होता है अति शोक।
किसी मान्य जन की कुटिल,
भ्रू भंगिमा विलोक।

दृग तारे होते न जो,
तो होते रवि सोम।
भरित दिखाता सर्वदा,
भूतल में तम तोम।

सहज नेत्र के सूत्र हैं,
हैं अकलित रुचिकाल।
सोच विमोचन ललिततम,
लोचन डोरे लाल।

प्रमुदित होता चित्त है,
कर कृति का उल्लेख।
विनयन शील युगल नयन,
विनय शीलता देख।

है अनुपम उद्भावना,
है कवि कुल अनुभूति।
लोचन की लालिमा है,
मुख लालिमा विभूति।

किसी छबीले छैल की,
कौन सका छबि छीन।
लालायित लोचनों की,
आलोचना हुई न।

चैन आयतन चित्त को,
बना-बना बेचैन।
हैं अनीति करते कभी,
नीति निकेतन नैन।

चित चञ्चलता का नयन-
चञ्चलता है अंग।
मधुर माधुरी के सदृश,
है दोनों का संग।

अवलोकन कर समझते-
हैं मानव मन मोल।
हैं लोकालयं खोलते,
लालित लोचन लोल।

उसकी भवतन हित रता,
ज्योति मयी है सृष्टि।
विविध अंग साधनों की,
है सहायिका दृष्टि।

बार-बार हैं किसलिए,
आँखें करते बन्द।
सदा नहीं क्यों देखते,
भव में परमानन्द।

सरस भाव की व्यंजना,
भावुकता भूली न।
आँखों में फूली पड़ी,
पर आखें फूली न।

आकुलता विदलित हुई,
धारण करके धीर।
दूर हुई जी की जलन,
मिले नयन का नीर।

कौन नहीं होता चकित,
कलित कलेजा थाम।
देखे लालित लोचनों—
की लालिमा ललाम।

बन-बन करके सर्वदा,
विपुल विलोचन चोर।
किस चित में चुभती नहीं,
है आँखों की कोर।

कुशल इसी में है बने,
नहीं विलोचन म्लान।
होवे माड़ा का शमन,
जाला हो ज्वाला न।

चन्द विनिन्दक चारुमुख,
का है चकित चकोर !
दिखा चौगुनी चातुरी,
लोचन है चितचोर।

चख-चख चितवन स्वादचख-
को मिलता है चैन।
बात कहें क्या चाह की,
उसमें धीरज है न।

है अतीव आनन्द प्रद,
है कमनीय महान।
युगल विलोचन का परम,
गौरवमय गुणगान।

चाल बुरी चल बुरा है,
कहलाता चालाक।
ताक झाँक अनुचित महा,
कट जायेगी नाक।

मान मिले अपमान का,
कभी न हो संयोग।
हम ऐसा क्यों करें जो,
नाक सिकोड़ें लोग।

जो ऊँची हो बन सके,
उच्च भाव का ओक।
नाक निवासी उमगते,-
हैं वह नाक विलोक।

नाक सहारे है हुआ,
तप जपादि संधान।
बिना नाक पकड़े नहीं,
हो सकता है ध्यान।

बात ठीक यह है नहीं,
होना है बदनाम।
कान पकड़ने पर किया,
गया अगर कुछ काम।

अपने हित की बात को,
कौन सका है छोड़।
बहरा बनने को सका,
कौन कान को फोड़।

कवि कुल की कल कल्पना,
बड़े-बड़े व्याख्यान।
किसे रिझायेंगे बने,
बिना सहायक कान।

करता रहता है दुखित,
जनता को दुख द्वंद्व।
कान कतरना कब किसे,
होगा कभी पसंद।

सब दिन होता ही रहे,
कान्त कीर्ति का गान।
मेरे कान सुखी बनें,
सरस सुधा कर पान।

पान के लिए सरस रस ,
रहे पिपासित कान।
होता ही सब दिन रहे ,
गौरवमय गुणगान।

किसी काल में हो नहीं ,
कान बन्द हो मन्द।
वह प्रतिदिन पाता रहे ,
पल - पल परमानन्द।

कहें तो कहें क्या भला ,
क्या वे हैं नादान।
कैसे कुछ सुन सकेंगे ,
सोये लम्बीतान।

निपट निराली उपज है ,
शिर पर मिली जटा न।
वे हैं योगी कनफटे ,
फटा न जिनका कान।

बातें गढ़-गढ़ हो सकी ,
किस प्राणी की वृद्धि।
गाल बजाये मिल सकी ,
किस साधक को सिद्धि।

बहँक दिखाने से भला,
है रह जाना मौन।
गाल फुलाये कब कहाँ ,
फूल फल सका कौन।

कम हो जाता है मनो—
रम सुमनों का मोल।
अवलोकन कर ललिततम,
कोई कलित कपोल।

रसना कभी सजग मिली,
कभी भर गयी भूल।
काँटे छींट गयी कभी,
बरस गयी या फूल।

सहज सरलता सलिल की,
वह है मंजुल मीन।
रसना क्यों रस बरसती,
जो होती रस हीन।

हो जाती है उस समय,
रसना भी असहाय।
रिस होने पर रसिकता,
है सिकता समवाय।

दाँत सताते हैं उसे,
पर वह है निरुपाय।
जीभ काट सकते नहीं,
क्यों न स्वयं कट जाय।

बिना किये अपराध भी,
रिपु बनता है काल।
गाली देती जीभ है,
मुँह बनता है लाल।

रंग बदल मुँह का गया,
हुआ और ही तौर।
जीभ हिलाये भी नहीं,
हिली कहें क्या और।

मधुर अधर माधुरी की,
मोहकता को देख।
ललक हुए भी लेखनी,
कब लिख पायी लेख।

बिम्बा फल प्रतिबिम्बसम,
कान्त बदन कर ओक।
पुलकित होता चित्त है,
युगल अधर अवलोक।

हैं समधिक सुषमा सदन,
मंजु बदन के लाल।
हैं मोहन स्वरके जनक,
मधुर अधर ये लाल।

जीभ हिलाये कब हिली,
कान हुआ कब तात।
होंठ चाट कर रह गये,
कढ़ी न मुँह से बात।

तब तुम क्या कहते भला,
समझ ली गयी बात।
होंठ हिलाये भी नहीं,
यदि हिल पाया गात।

यह कुचलन है और है,
नहीं सुरुचि अनुकूल।
बात-बात में दाँत का,
है निकालना भूल।

हँसते हुए मुखेन्दु में,
दसन दमक अवलोक।
पुलकित होता चित्त है,
पा अनुपम आलोक।

वे क्या समझेंगे लगा,
करती है क्या चोट।
कटुता में पड़ कर हुए,
जिनके दाँत न कोट।

नहीं छलकती छवि छटा,
द्युति दिखलायी दीन।
कान्त ज्ञात होता नहीं,
आनन दन्त विहीन।

थोड़ी बातों के लिए,
तुरत बने क्यों तात।
तेवर बदले किसी का,
क्यों तुड़वायें दाँत।

कब तक हम चुप रहेंगे,
खल को क्यों दे छोड़।
खड़े बखेड़े क्यों सहें,
क्यों न दाँत दें तोड़।

यह तो झंझट है किसे,
कौन सका कब पीस।
दाँत पीसना है बुरा,
बुरी बला है खीस।

पुरुष पुरुषता की सखी,
कलित कला में लीन।
चिबुक न होती तो रुचिर
दाढ़ी दिखलाती न।

काट छाँट के पेच में,
पड़ क्यों उकताती न।
जो प्रपंच से मूँछ के,
चिबुक निबुक पाती न।

अपनी अपनी जगह पर,
है दोनों की पूछ।
यदि दाढ़ी है मोहती,
तो महती है मूछ।

रोब दाब का अंग है,
गौरव का उपमान।
कब दाढ़ी के बाल का,
हुआ बोलबाला न?

ऐसे लोगों से सँभल,
मिलो हुए संयोग।
हैं लायक होते नहीं,
मुँह लटकाये लोग॥

कुछ न कभी कर सकेगा,
जो भोगे है भोग।
पर के मुँह को ताकते,
रहते हैं क्यों लोग।

तमक दिखायेगा न वह,
करेगा न उत्पात।
जिसके मुँह से है कभी,
कढ़ी न कच्ची बात।

कहाँ बरसता हुन रहा,
कहाँ हुआ अंधेर।
किसको दुख होगा नहीं,
हुए दिनों का फेर।

बने किसी के भी लिए,
पेट न बुरी बलाय।
हाय! हाय! करता फिरे,
कोई क्यों मुँह बाय।

तोर-मोर की बान तज,
अवलोके सब ओर।
मुँहफट है मुँह फेरता,
बन-बन कर मुँह चोर।

रहा भाग्य में जो बदा,
भोग चुके वह भोग।
सुफल चाहते हैं तुरत,
मुँह फैलाये लोग।

खिला कौन सा दिल नहीं,
देख चाँदनी रात।
किसे लुभाती है नहीं,
मुँह की मीठी बात।

वह मानी जाती नहीं,
रहती है अज्ञात।
छोटे मुँह द्वारा कही—
गयी बड़ी जो बात।

सदाचार का पाठ तो,
नहीं हो सका कंठ।
कंठी पहने क्या हुआ,
रहा लंठ का लंठ।

क्यों न सरसता लाभ हित,
लोग बनें उत्कण्ठ।
रस बरसाते हैं सदा,
सकल सुरीले कण्ठ।

लालच दे दे कर थका,
वह तो ललचाया न।
खोल थका पर कंठ तो,
खोले खुलपाया न।

चित की व्याकुलता गयी,
है क्या उसमें पैठ।
किसने बिठलाया उसे,
कण्ठ गया क्यों बैठ।

विविध यज्ञ के लिए क्यों,
भव होता उत्कण्ठ।
वेद ध्वनि होती नहीं,
यदि नहिं होता कण्ठ।

समझ बूझ की आँख को,
कभी मूँद लेवे न।
घाटे में पड़ किसी का,
गला घोंट देवे न।

निज कर से ही निज गले,
का काटना विलोक।
हो विचित्र पर कौन कब,
किसे सका है रोक।

है अतीव अनुरंजनी,
अनुपम कला निधान।
किसी कान्ततम कण्ठ की,
अति कमनीया तान।

उसका जीवन व्यर्थ है,
जो हित पाग पगा न।
देश प्रेम के गले से,
जिसका गला लगा न।

स्वकर्तव्य पालन किये,
होगी क्यों न प्रसिद्धि।
ढोल गले में पड़ गयी,
बजे मिलेगी सिद्धि।

कौन मुग्ध, होता नहीं,
ग्रीवा गौरव देख।
किसकी छवि का हुआ है,
बार-बार उल्लेख।

कौन मुग्ध होता नहीं,
देखे ललित विकास।
है प्रफुल्ल करता किसे,
नहिं भव हास विलास।

है वारिज उत्फुल्लता,
है विनोद अभ्यास।
हँसता है विधु वदन का,
अति कमनीय विकास।

मुसकाना है मधुरतम,
भावुकता की भूति।
महा मनोहर मानसिक-
ता की है अनुभूति।

सहृदय होता है सुखी,
सद्भावों को सोच।
हँसते-हँसते लोटना,
है ललामता लोच।

सदा मंजुतम कार्य से,
करता रहे प्रसन्न।
हँसना मानव मात्र का,
बन-बन सुख सम्पन्न।

है आँखों को मोहता,
बुझा मंजुता प्यास।
किसी मनोरम बदन का,
परम मनोरम हास।

कैसे होगी दया जो,
उर में ममता है न।
कठिन कलेजा देख कर,
दुख यदि द्रवता है न।

उर में हुआ न अंकुरित,
भव हित तरुवर बीज।
जीवन कैसे सफल हो,
पुलक पसीज-पसीज।

मेल रहित मेली उसे,
कथमपि कहीं मिले न।
छूत छात से दूर रह,
छाती कभी छिले न।

क्यों न हठी हठकर सदा,
हठ करना ले ठान।
जिसमें सहृदयता नहीं,
वह सहृदय होगा न।

किसी मनुज के अंक के,
हैं लालित प्रिय लाल।
व्यंजन हैं बर थाल के,
जन छाती के बाल।

वे हैं अब मुँह नोचते।
जिन से हुआ सलूक।
छीछा-लेदर देख कर,
छाती हुई छटूक।

मुझे दयानिधि चाहिये,
दिव्य बाँह की छाँह।
है निबाह होता नहीं,
प्रभु तुम करो निबाह।

लोक विजयिनी बाहु की,
मांसलता का मोल।
कह सकती रसना नहीं,
बन जाती है लोल।

दुख होगा जो भुज पकड़-
ले कपूत की राह।
पड़ प्रतिकूल प्रवाह में,
करे न व्रत निर्वाह।

भले भाव में भर भुजा,
करे भलाई नित्य।
किसी समय भी बहककर,
करे न कुत्सित कृत्य।

हैं द्विबाहु वसुधा विजय,
केतन कीर्ति निकेत।
अनुपम गरिमा गौरवित,
बर वीरता उपेत।

बाहु है कला आकलित,
कान्त कान्ति सम्पन्न।
धन्य धन्य ध्वनि पात्र हैं,
हैं विमुक्त आपन्न।

बनी सर्वदा ही रहे,
दया दृष्टि दयनीय।
दोनों कर करते रहें,
कृत्य परम कमनीय।

उन लोगों के वास्ते,
जो हैं दीन अनाथ।
ऊँचा हाथ रहे सदा,
हो नहिं नीचा हाथ।

जो पचकाये पेट हैं—
फिरते बने अनाथ।
चार हाथ उनके लिए,
बनें जन युगल हाथ।

माँगे कुछ न मिले कभी,
तो भी करे न रोष।
सब के आगे हाथ का,
फैलाना है दोष।

दाता जिससे हो चकित,
त्राता तज दे साथ।
इतना फैलाये नहीं,
कोई अपना हाथ।

है अनाथ कोई नहीं,
हैं अनाथ के नाथ।
हाथ बँधे तो क्या हुआ,
खुल जायेंगे हाथ।

हैं उनकी ही उँगलियाँ,
सत्कृति की उपमान।
देते रहते हैं युगल,
कर जिनके नित दान।

जान-बूझ कर आँख में,
उँगली करवायें न।
काट कूट से दूर रह,
उँगली कटवायें न।

कभी उँगलियाँ तोड़कर,
बड़े मनोहर फूल।
हार बनाती हैं सदा,
निज मानस अनुकूल।

कभी बनाती हैं समुद,
मंजुल मुक्ता हार।
और बनाती हैं उसे,
दिव्य देव उपहार।

कभी नचाती हैं मुरज,
बन मंजुल ध्वनि मूर्ति।
कभी उँगलियाँ मुग्धबन,
करती हैं स्वर पूर्ति।

अच्छी कब मानी गयी,
कर की कुत्सित बान।
जो कहता हूँ वह करो,
हित बातें लो मान।

क्या समझे, नर सोचता,
क्या है रह रह मौन।
कभी किसी के पेट में,
पैठ सका है कौन?

भक्ति भवानी से नहीं,
हो सकती है भेंट।
भाव भजन है हो नहीं,
सकता भूखे पेट।

तो भी घबराओ नहीं,
करो प्रयत्न अनेक।
किसी समय हो गया हो,
पेट - पीठ यदि एक।

टेंट में न कुछ रहे तो,
दिवस बितायें लेट।
प्राण जाय तो जाय पर,
पापी बने न पेट।

अधिक क्या कहें पेट के,
ढकोसले कम हैं न।
उसके पचड़े में पड़े
मिला किसे कब चैन।

अपना ही करतब कभी ,
अपने को निगले न ,
जो कलपाये, पेट में—
ऐसी आग बले न ।

जीत हुई पर जीत की ,
अब तक ज्योति जगी न ।
गिरनेवाला गिरा पर ,
अब तक पीठ लगी न ।

सावधान उनसे रहें ,
पर न करें बकवाद ।
जो करते हैं पीठ के ,
पीछे निन्दा वाद ।

उस पर पड़ती ही रहे ,
सदा समादर डीठ ।
कार्य कुशल की सर्वदा ,
रहें ठोंकते पीठ ।

कभी किसी से वे नहीं ,
जोड़ सकेंगे गाँठ ।
पीठ दिखाने का पढ़ा ,
करते हैं जो पाठ ।

साधन बल से ही मनुज ,
पाता है अपवर्ग ।
करता शान्ति प्रदान है ,
सिद्ध पीठ संसर्ग ।

अन्यों की आलोचना,
होगा अनुचित कर्म।
सिद्ध पुरुष कह सकेंगे,
सिद्ध पीठ का मर्म।

बहु क्षति होता गात जो,
होता नाभि विहीन।
पंच वायु में एक है,
उसके ही आधीन।

साहस करते बेतरह,
तो तुम गिर पड़ते न।
दिल पहले ही हिला तो,
जाघें हिलती क्यों न।

पद मर्यादा मूल हैं,
हैं एकान्त अनूप।
दोनों अति दृढ़ जानु हैं,
तन के स्तम्भ स्वरूप।

निज मर्यादा क्यों तजें,
होवे विघ्न अनेक।
पद प्रतिपत्ति विनाशकर,
क्यों घुटनें दें टेक।

लोप कभी होवे नहीं,
पद ममता की लीक।
प्रगति प्रतिष्ठा के लिए,
है ठेहुना ही ठीक।

जीते यह होगा नहीं,
हुए प्रपंच अनेक।
मान घटायें किसलिए,
क्यों घुटनें दें टेक।

अधिक अलौकिक क्यों न-
यह कहलाये करतूत।
पूजित पद रज मिले है,
पाहन होता पूत।

जन पूजित पद पद्म की,
पूजा हुई कहाँ न।
पद निधौत जल सर्वदा,
माना गया महान।

जो होती न पुनीतपद-
पंकज प्रगति महान।
तो बनती भू आगता,
सरिता सुर सरिता न,

सब को मिलना चाहिये,
पथ, आहार, विहार।
किसी को नहीं चाहिये,
करना पाद प्रहार।

तम अपनोदन निपुण है,
अनुपम तन अवदात।
पातक पतन समर्थ है,
पावन पग जल जात।

भक्ति भावना से भरित,
है उसकी अनुरुक्ति।
है पूजित पदकंज में,
पतित पावनी शक्ति।

कोई कैसे करेगा,
अवसर देख विलम्ब।
चरण शरण ही जो बने,
मरण समय अवलम्ब।

तिमिर हरन तेजो कलित,
सदन अलौकिक ओज।
क्या प्रदान करता नहीं,
पूजित पद पाथोज।

किसी समय होती नहीं,
पग की प्रीति प्रतीति।
बस जाती है चित्त में,
चरण चिह्न की नीति।

विविध विभव सम्पन्न हो,
अथवा हो अवनीश।
पूजित पद पर ही रखे,
गये सर्वदा शीश।

लाल लाल तलवे सदा,
बनते रहे ललाम।
कैसे किसे कहाँ मिले,
ऐसे गौरव धाम।

यदि तलवे की लालिमा,
है जन लोचन चोर।
तो एड़ी मोरनी का,
है मानव मन मोर।

माता ही है जानती,
अन्तःकरण टटोल।
सुत के लालित युगल मंजुल-
तलवों का मोल।

धूल धूसरित रहें या,
हों अति उज्वल कान्त।
जननी को तलवे ललित,
हैं मोहते नितान्त।

होंगे तलवे चाटने,
वाले वे ही लोग।
दुर्बल जिनको है बना-
ता रहता संयोग।

कहाँ दया है चित्त में,
जो दुख देख अड़े न।
रोये दुखिया के अगर,
रोयें हुए खड़े न।

जनता को होती रहे,
जो सच्ची अनुभूति।
रोम रोम में है भरी,
तो वास्तविक विभूति।

कथा किसीके ताप की,
सुन लगती है आँच।
देख किसी की यंत्रणा,
होता है रोमांच।

कहने वाले कहें पर,
कहते मिले सभी न।
रोयें रोयें गिर गये,
कभी किसी के भी न।

साहस रवि संगी बनें,
दूर करें तम तोम।
लोम लांछनित हों नहीं,
कभी न बने विलोम।

डींग बघारें क्यों भला,
है रह जाना मौन।
तन के रोयें किसी के,
कभी गिन सका कौन।

कस में किसके कौन है,
चित है बहु बेचैन।
नस नस में है वेदना,
निज तन बस में है न।

तब तक है सुख साधना,
हास विलास प्रयास।
तबतक जीवन है रहे,
जबतक तन में श्वास।

उसका जीवन धन्य है,
है बहु मूल्य मिलाप।
छोड़ सका जो लोक में,
अपना कीर्ति कलाप।

है बिखेरता पंथ में,
काँटे कहाँ बबूल।
समय बरसता है कभी,
किसी शीश पर फूल।

महा मनोहर मुग्ध कर,
रहित समस्त कलंक।
आरंजक शुचिरुचि रजनि,
चित है मंजु मयंक।

दुख है विविध प्रपंच का,
जो वह बने निकेत।
होते हुए न चेतना,
चित जो बने अचेत।

हो जाती है चित्त की,
कामुकता की पूर्ति।
अवलोकन कर काम सी,
लोक मोहनी मूर्ति।

लाल लाल आँखें चढ़ीं,
भय आकलित कपाल।
शंकित होता चित्त है,
देख मूर्ति विकराल।

चित्त सँभल करके चलो,
जो चाहो निर्वाह।
साधारण होता नहीं,
लोभ प्रकाण्ड प्रवाह।

देश जाति परिवार का,
कौन कर सका द्रोह।
मोहित होता चित्त है,
मिले मंजुतम मोह।

मैं पढ़ पाता हूँ न क्या,
है कपाल का लेख।
उलझन होती हैं अधिक,
चित चञ्चलता देख।

संकट से कर के समर,
सुख पाता है सूर।
कल मिलता है चित्त को,
हुए विकलता दूर।

विपुल कला से आकलित,
पुलकित भरित उमंग।
मन है गात सरोज का,
प्रभानिकेत पतंग।

मति है मन अनुरागिनी,
है स्वाभाविक प्यार।
दोनों का दोनों किया,
करते हैं सत्कार।

मन होकर मद मत्त जब,
करता है अपकार।
विचलित होता उस समय,
है सारा संसार।

नीति

अपने अपने काम से,
है सब ही को काम।
मन में रमता क्यों नहीं,
मेरा रमता राम।

माँगे लघुता ही मिली,
मानस के अनुरूप।
वामन ने की याचना,
धर कर वामन रूप।

कर पसार वामन लगे,
जब पसारने पाँव।
वामनता को नहिं मिला,
वामनता में ठाँव।

क्यों माने मनदान को,
महि में महिमावान।
बलि जब बन्धन में पड़ा,
विधि पर हो बलिदान।

खेद रहित है तदपि है,
करता हमें सखेद।
रख अमोदता भाव में,
बलि वामन का भेद।

मान घट गया बन गया,
अब सर ज्ञान विहीन।
आँख चढ़ाये क्या हुआ,
जो वह चढ़ पायी न।

भली पैंठ तज वह गया,
बुरी पैंठ में पैठ।
कान ऐंठने पर गयी,
अगर किसी की ऐंठ।

बातें करें अकास की,
बहक बहक हो मौन।
जो वे बनते सन्त हैं।
तो असन्त है कौन।

अपने पग पर हो खड़े,
तजें परायी पौर।
रख बल अपनी बाँह का,
बनें सबल सिरमौर।

कौन पास उसका करे,
जिसे नहीं निज पास।
पूज पराये पाँव को,
किसकी पूजी आस।

प्यास कभी जाती नहीं,
पिये बिना रस ऊख।
भूख भला किसकी भगी,
हरे देख कर रूख।

कोइ भला न कर सका,
खल को बहुत खखेड़।
सुन्दर फल देते नहीं,
बुरे फलों के पेड़।

क्या खुल पाये जब गये,
नीलकण्ठ! पर टूट।
क्या छूटे जब नहि सके,
कुटिल काल से छूट।

चाकर हैं सब चित्त के,
क्या चकोर क्या कोक।
खिले कमल अवलोक रवि,
कुमुद मयंक विलोक।

आनन्दित कर है वही,
कुमुद हृदय आनन्द।
हो वे विविध कलंक से,
क्यों न कलंकित चन्द।

अपने अपने भाव हैं,
अपने अपने साथ।
भूले आक-प्रसून पर,
भोले भोला नाथ।

केसर रंग प्रसंग से,
फड़के भरे उमंग।
केसरिया पागा पहन,
वीर केसरी अंग।

अल्पकाल से कलित है,
चिर संगति का काल।
केसर क्यारी कब बना,
केसर विलसित भाल।

कहाँ सुबास बसी रही,
बनी कुबास कुठौर।
कामुकता कस में रहे,
कल केसर की खोर।

काले रंग में जो रंगे,
होते कुटिल कठोर।
मूँगे सा होता नहीं,
तो मूंगे का ठोर।

विकसित करते नहिं किसे,
विकच बदन बुध वृन्द।
हिले मिले अलि से रहे,
कब न खिले अरविन्द।

भूल भूल है क्यों कहें,
उसे बुद्धि अनुकूल।
फले बिना सफल बने,
कैसे गूलर फूल।

विधि सा सुत रवि सा सुहृद,
पा हरि सा आधार।
सार हीन होता रहा,
सरसिज पड़े तुसार।

काल बना क्यों कमल का,
क्यों कर सका न प्यार।
तू तुसार यह समझ ले,
है असार संसार।

कैसे वारिज पुंज की,
दहे नहीं वह देह।
हिमकर-अहितू से करे,
हिम समूह क्यों नेह।

भले बुरे की ही रही,
भले बुरे से आस।
काँटे हैं तन बेधते,
देते सुमन सुबास।

जो न भले हैं तो भले,
कैसे दें फल फूल।
काँटे बोयें क्यों नहीं,
काँटे भरे बबूल।

है छाया छाया नहीं,
हैं फल चढ़े पहाड़।
ऊँचे बन पाये नहीं,
सिर ऊँचा कर ताड़।

रसिक जनों के हैं सधे,
सरस हृदय से काम।
रस वाले फल दे सके,
रस वाले तरु आम।

कांटे बिध बिध के न क्यों,
बेध बेध दें पैर।
बैर नाम है बैर का,
कैसे करे न बैर।

पत खोकर होती नहीं,
सुखद सुखों की प्यास।
क्या फूले दल रहित हो,
फूले अगर पलास।

अधिक मधुर जो कर सका,
तेरे फल को पाल।
क्या रसालता तो रही,
तेरी विटप रसाल।

रह समीप सुख से हिले,
बदरी फल दिन रात।
क्यों विदलित होता रहे,
कदली दल का गात।

विपुल दलों को सछबि कर,
बन बहु मंगल धाम।
बड़े हुए हैं कदलि दल,
बड़े बड़े कर काम।

कटुता में पटुता मिली,
है हित पटु कटु नीम।
दल हैं नर-दुख दलन रत,
फल हैं फलद असीम।

ऊँचा होकर भी सका,
तू चल भली न चाल।
चंचल दल तेरे रहें,
क्यों चल दल सब काल।

कर देते हैं जी हरा,
बार बार कर छेड़।
पा करके पत्तो हरे,
ये पाकर के पेड़।

बहु विनोद-धन से किसे,
नहिं करता धनवंत।
हर सिंगार की सुरभि से,
हो सौरभित दिगंत।

पुलकित करती है विपुल,
बन बन पुलक निवास।
हर सिंगार की दूर से,
आती सरस सुवास।

हो माई का लाल तो,
एक लाल है लाल।
कब सेमल लाली रही,
हो फूलों से लाल।

सेमल हो ऊँचे तदपि,
हो भूले, कर भूल।
जिनके फल हैं नहिं भले,
क्या वे सुन्दर फूल।

हैं सुन्दरता सफलता,
मधुमयता अवलम्ब।
ये कदम्ब तरु के लिए,
पीले कुसुम कदम्ब।

———

कुसुम-क्यारी

भली रही होती अगर,
भौंरे ही से भूल।
बेले पर फूले नहीं,
क्यों बेले के फूल।

क्यों फूली है तू बहुत,
भली नहीं यह बान।
जूही तूही सोच क्या,
तू ही है छबिवान।

है सुवास सुकुमारता,
सुन्दरता में लीन।
बेलि चमेली की बने,
कैसे अलबेली न।

हरे हरे दल में लसे,
सके नहीं पल भूल।
गेंदे के फूले हुए,
पीले पीले फूल।

किसे नहीं हैं मोहते,
मिले मनोहर आब।
रंग भरें निखरे खरे,
सुधरे सरस गुलाब।

ललित ललाम कपोल से,
विलसित मंजुल धूल।
हैं अनमोल गुलाब के,
गोल गोल ये फूल।

मिले बुरों में कब भले,
यह कहना है भूल।
कांटों में रहते नहीं,
क्या गुलाब के फूल?

आकुल करते नहिं किसे,
हो अंगज प्रतिकूल।
दल सकते तनकीट नहिं,
बहु दल वाले फूल।

आम आम है प्रकृति से,
और बबूल बबूल।
कांटे ही कांटे रहे,
रहे फूल ही फूल।

पाता गुणी समान है,
मान नहीं गुण हीन।
नाम मिले गुलचाँदनी,
हुई चाँदनी सी न।

वैसे ही विकसे रहे,
रही दिव्य ही आब।
काँटों में रह रह हुए,
नहिं कंटकित गुलाब।

है समानता की नहीं,
किसी सुमन में ताब।
हैं गुलाब के फूल से,
सुन्दर फूल गुलाब।

देख बर विभव कब हुई,
प्रमुदित प्रीति वधू न।
नयन पटल हैं खोलते,
पाटल रुचिर प्रसून।

जो उसका चाहक नहीं,
भूरि भावमय भृंग।
तो चम्पक है काम का,
कहाँ चम्पई रंग।

कब गौरव से गौरवित,
हुआ कलंकित गात।
चम्पक बरनी सा बने,
बनी न चम्पक बात।

देख प्रेम पथ के नियम,
मति होती है मौन।
विकच कुमुदिनी को करे-
बिना कौमुदी कौन।

आलोकित होवे जगत,
पा दिनकर आलोक।
प्रमुदित होते हैं कुमुद,
कुमुद बन्धु अवलोक।

है उसका वह चाव थल,
चिर परिचित चित चोर।
सूरजमुखी न मुख रखे,
क्यों सूरज मुख ओर।

वसुधा तलमें है विदित,
वदन विलोकन बान।
कौन सरोजमुखी मिली,
सूरज मुखी समान।

पाते हैं प्यारी सुरभि,
सारे सुमन अनूप।
न्यारी न्यारी रंग ते,
न्यारे - न्यारे रूप।

उसके दल अनुराग के,
परम चतुर हैं चोर।
जपा-लालिमा सी मिली,
कहाँ लालिमा ओर।

ललना अधरों पर लगी,
जिसकी सुललित छाप।
जपा! लालिमा वह मिली,
कौन मंत्र कर जाप।

बनता है बहु भाव मय,
निज कुभाव को भून।
हो मुकुन्द बनमाल में,
विलसित कुंद प्रसून।

त्रिपुरनिकन्दन मौलिपर,
चढ़ कदापि मत फूल !
कुन्द ! कभी आनन्द के,
कन्द को न तू भूल ।

शिवतन की समता मिले,
हो हो ममतावन्त ।
कुन्द दन्त सम बन करो,
मत गौरवका अन्त ।

है मानस को मोहती,
महँ महँ महँक अपार ।
मन्द मन्द आता पवन,
परस - परस मन्दार ।

सहज विकचता चित्त की,
लालच लोचन लोल ।
है मंजुल मन्दार की,
मालाओं के मोल ।

रसलोलुपअलिअवलिको,
वर रस देती जो न ।
तो सकती तू सेवती—
रुचिर रसवती हो न ।

उसकी प्रेमिक मधुप को,
कब न रही परवाह ।
नहीं निवारी जा सकी,
नवल निवारी चाह ।

है मदार के फूल में,
रूप न रंग न बास।
कैसे भला मधुर हृदय,
मधुकर आवे पास।

है बसती अपकारिता,
सब में गरल समेत।
पीली हो या लाल हो,
या केनर हो श्वेत।

अंधेकर, कर वह रही,
प्रेमिक अलि प्रतिकूल।
मिले धूल में केतकी,
तेरी सुरभित धूल।

तेरे काँटों से रहे,
जो छिदते अलिगात।
तो तू कैसे केतकी,
बनी कनक अवदात।

गंध नहीं रस रूप नहिं,
है मदांधता मौन।
औढर ढरन बिना ढरे,
आक कुसुम पर कौन।

मन मयूर है नाचता,
मोद मान सउमंग।
श्याम घटा सा देख कर,
श्याम घटा का रंग।

नयन विमोहन मधु-सदन,
मोदमयी महनीय।
कुसुम कुसुम की कुसुमता,
है नितान्त कमनीय।

प्यारा लगता है कुसुम,
बड़ा निराला ढंग।
रहा कब नहीं सोहता,
तेरा सूहा रंग।

कैसे कोमल हैं कुसुम,
ये हैं कुलिश समान।
हैं अबेध को बेधते,
बन अनंग के बान।

तब क्यों आकुल अलि करे,
कुटज कुसुम रसपान।
जब करती है माधवी,
अति मंजुल मधुदान।

क्या विकसे वारिज नहीं,
क्या सरसे नहिं बौर।
घेर घेर हैं घूमते,
क्यों कनेर को भौंर।

किसमें ऐसा है मधुर,
रूप रंग औ बास।
मधु लोभी मधुकर तजे,
क्यों माधवी निवास।

हैं सुरंग सुन्दर बड़े,
अनुपम छवि अनुकूल।
पा न सके मंजुल महँक,
गुल मेंहदी के फूल।

रंग किसी के पास है,
रूप किसी के पास।
किसी फूल ही में मिला,
रूप रंग औ बास।

रहा प्यार के रंग का,
जगती तल में जोर।
काले फूल कहीं मिले,
लाल फूल सब ओर।

प्यारे होंगे भाव को,
श्याम रंग में बोर।
श्याम घटा की श्यामता,
सदा रही चित चोर।

हरियाली उनके लिए,
हुई नहीं अनुकूल।
हरे पेड़ फल दल मिले,
हरे मिले नहिं फूल।

उजले पीले लाल हैं,
अथवा नीले आप।
कर देते हैं जी हरा,
मंजुल कुसुम कलाप।

औरों के कुछ और हों,
उसके सुख मूल।
हरी लहलही दूब के,
सहज फबीले फूल।

लोचन खुले विनोद के,
विलसित हुए विवेक।
किसी अमल जलताल में,
विकसे कमल अनेक।

सकल लोकपति-कीर्तिका,
हैं कर रहे विकास।
उजले उजले फूल से,
लसे सुविकसित कास।

फूल फूल जैसे नहीं,
है न वास का बास।
किसी काम का है नहीं,
तेरा कास विकास।

उसका रवि से बैर है,
इसका रवि से प्यार।
करें कमल कुल का दलन,
कैसे नहीं तुषार।

मत्त मलिन्द

क्या न भरेंगे भाँवरे,
क्या भूलेंगे और।
क्या तज देंगे कुसुम को,
कंटक-भय से भौंर।

होती है पुलकित विपुल,
मिले अति ललित ओक।
विकसित कली गुलाबकी,
अलि अवली अवलोक।

कहाँ मधुप लोलुप महा,
चपल अमंजुल गात।
कहाँ गुलाब खिली कली,
कोमल कल अवदात।

विधि संगत होते नहीं,
विधि के बहु सम्बन्ध।
है सुगन्ध पूरित सुमन,
मधुप परम मधु अंध।

रंग तुम्हारा है रुचिर,
उनके काले अंग।
सुमन तुम्हारी क्यों पटी,
कपटी मधुकर संग।

खिले भले ही हों सुमन,
हो अति सुन्दर रंग।
सदा रहे कृमि कुलदलित,
आकुल अलि से तंग।

पहुँचे को प्रिय पास है,
पहुँचाती पहचान।
चञ्चरीक चित में चुभी,
चम्पक चम्पकता न।

कैसे तन को बेधते,
केतकि कंटक पुञ्ज।
मिलती मत्त मलिन्द को,
जो मालती निकुञ्ज।

फंद में न फँसता अगर,
आँख न होती बन्द।
है लोलुप मकरन्द का,
यह मलिन्द मतिमन्द।

है न भलों की नीति यह,
है न भली यह रीति।
अलि ! अलिनी तजकी गयी,
क्यों नलिनी से प्रीति ?

गूँज गूँज क्यों कुंज में,
मचा रहा है धूम।
अली घूम है क्यों रहा,
कली कली को चूम।

ललक ललक बहु कुसुमकी,
लेता है अलि बास।
रस-लोलुप की बुझ सके,
कैसे रस की प्यास।

प्यार करे अथवा करे,
चपल मधुप अपकार।
तज न सका सुकुमारता,
सिरिस सुमन सुकुमार।

हो ललाम चाहे सुमन,
चाहे हो अललाम।
है रस-लोभी मधुप को,
केवल रस से काम।

आँखों में रज भर गयी,
छिदा विधा सब गात।
तदपि न है तजता मधुप,
मधु पूरित जल गात।

रूप रंग अब नहिं रहा,
नहीं रही अब बास।
कैसे अलि आये भला,
दलित कुंसुम के पास?

वह ललामता है नहीं,
अति आकुल है कोक।
आज कमल कुल है दलित,
अलिकुल! लो अवलोक।

आकुल क्यों हो देख लो,
कुटिल काल उत्पात।
आज हुआ हिम पात से,
अलिकुल! कमल निपात।

हुआ परम मद-मत्त अलि,
कर कर मधु अनुराग।
बिहर-बिहर वह कुंज में,
हर-हर कुसुम पराग।

है रस प्रिय की रसिकता,
है मधु-प्रिय मधु प्यास।
परम विलासी मधुप का,
विलसित कुसुम विलास।

दलित हो गये सकल दल,
सुरभित रही न धूल।
रहा कमल कुल अब नहीं,
अलिकुल के अनुकूल।

कान्त-कामना

है न मुक्ति की कामना,
नहीं अमरता चाव।
जन में भारत भूमि में,
रहे भरा हित भाव।

चाह नहीं बैकुण्ठ की,
नहीं स्वर्ग की प्यास।
रत भारत हित में रहें,
हो भारत में वास।

भारत भूतल भक्त सम,
भूरि भाग है कौन?
उसकी महिमा शेष कर,
शेष न होगा मौन।

बोटी - बोटी में उमग,
रोम - रोम में त्याग।
रग रग में होवे भरित,
भारत का अनुराग।

तृण हों, तरु हों मेरु हों,
कृमि हों या हों खेह।
हों भारत जन हित-निरत,
हो भारत से नेह।

है ऐसी कमनीयता,
कहाँ अमरपुर पास।
भारत भू-सा है नहीं,
अमरावती निवास।

रत्नाकर है वारता,
पग पर रत्न अपार।
भारत भूतल है सकल,
सुर विभूति का सार।

हार न मानें हार हम,
सिर पर गिरे पहार।
भारत हों पर हो भरा,
उर में भारत प्यार।

रोम नुचे बोटी कटे,
खिंचे सकल तन चाम।
हम उमंग में भर करें,
भारत भूतल काम।

मिले पुरन्दरता नहीं,
है न परम पद आस।
रहें भक्ति भावों सहित।
भारत भूतल दास।

चाह स्वर्ग की है नहीं,
है न लोभ अपवर्ग।
है कामना स्वदेश पर,
हो जीवन उत्सर्ग।

विविध

बनी बात भी बिगड़ती,
है बल डाले तात।
मुँह से कभी न काढ़िये,
टेढ़ी मेढ़ी बात।

नीच जनों की नीचता,
सठ सठता अवलोक।
मुँह बिचकाये क्या हुआ,
कौन सकेगा रोक।

मन - माना है बुरा है,
किसे सकोगे मूस।
उससे क्यों हो माँगते,
जो हैं मक्खीचूस।

पाप पुञ्ज का हो पतन,
हो स्वधर्म सम्मान।
सकल कलाओं का सबल-
बन कर दें बलिदान।

नत का रोआँ भी कभी,
करता है अपकार।
है सितार पत उतरती,
कोई उतरे तार।

पल-पल पुलकित विपुल-
बन पाता है चित चैन।
देखे कोमलता अयन,
अमल कमल सम नैन।

चालें ऐसी क्यों चलें,
पड़े चाटना थूक।
ताने दे दे तिनकना,
तन जाना है चूक।

दव समान हैं दमकते,
हैं दिवि देव समान।
दिव्य दुलारे लाडिले,
हैं दिव्यता निधान।

कब कर पाते हैं नहीं,
अधम मनुष्य अधर्म।
कभी समझ पाते नहीं,
कर्म धर्म का मर्म

महि प्रसूत जड़ वस्तु में,
है न प्रीति की नीति।
जीवों में ही है हुआ,
करती प्रीति प्रतीति।

तब क्या होगा सोच लो,
किये विविध उत्पात।
माथा पटके भी अगर,
नहीं पट सकी बात।

समझ बूझ कर हित करो,
अहित पंथ दो छोड़।
होता देख अनर्थ लो,
तुम अपना मुँह मोड़।

अर्थ का समझ अर्थमत,
करो कदापि अनर्थ।
सार्थक जीवन को करो,
उसे न कर दो व्यर्थ।

सिर पर आयी बला को,
कौन सका है टाल।
बाल बाल हैं बिन गये,
बढ़ता है जंजाल।

कर दिखलायेंगे किसी,
को राजा या रंक।
अंकित जो हैं हो गये,
जन कपाल में अंक।

ममता मेरे चित्त की,
हो अप्रीति आयत्त।
आठ आठ आँसू रही,
रोती हो उन्मत्त।

निर्जीवों में भी करें,
जो जीवन संचार।
वे हैं सुकृती विवुध वर,
वे हैं परम उदार।

लोक दशा अवलोक हैं,
प्रगति प्रिय रहे थूक।
रहे जहाँ मृग विहरते,
वहीं जमा है खूक।

नर्तन रत हो चित्त जन,
बन जाता है मोर।
सुने भोर की भैरवी,
कौन न बना विभोर।

पेट पालता नित्य है,
जो औरों को मूस।
उससे क्या पा सकोगे,
जो है मक्खी चूस।

निज जीवन का नाश ही,
जिसका है उद्देश।
होता है अति भयंकर,
आत्म ग्लानि आवेश।

हैं हैं करते क्यों रहें,
करें कमर कस काम।
अच्छा होता है सदा,
जीवन का परिणाम।

भली राह से फेर कर,
मुँह हम कभी फिरें न।
जान बूझ कर पाजियों,
से भी कभी भिड़ें न।

यद्यपि जीवन मध्य है,
बहुत बड़ी यह टूट।
पर स्वाभाविक है फटे,
जी, पड़ जाना फूट।

सदा चतुरता का रहा,
आतुरता से बैर।
कार्यपंथ में सँभलकर,
चाहिये रखना पैर।

कुछ बोले मुँह सिल गया,
अहह खिंच गयी जीह।
नाकों में दम हो गया,
रहते निपट निरीह।

मैं बेबस बेबसी का,
नहीं कह सका हाल।
आँख दिखाये ली गयीं,
आँखें युगल निकाल।

अत्याचारों की कहाँ,
तक बतलाऊँ बात।
दाँत निकाले हँसदिये,
गये तोड़ सब दाँत।

धारण कर गंभीरता,
भावुकता संजात।
होती है यह समझ लें,
बात बात में बात।

लोक हितकरी भव सुखद,
है अनुपम अनुभूति।
मति गति कैसे ज्ञात हो,
यदि है कुमति विभूति।

सरस राग रस सिक्त हो,
कब मन बना न मीन।
राग रंग में रँग हुआ,
कौन नहीं रंगीन।

ऐसे लोगों पर करें,
क्यों न विवुधजन रोष।
जो हैं दूषित चित्तके,
क्यों न छिपायें दोष।

भले काम के लिए हम,
कभी जी चुरायें न।
किसी का कलेजा कुचल,
उसको कलपायें न।

पुलकित होता है हृदय,
पढ़े प्रेम का पाठ।
है जन जीवन दायिनी,
जी की जोड़ी गाँठ।

बड़ा नीच यह काम है,
है कमीन पन ढोंग।
जान बूझ कर किसी का,
जी न जलायें लोग।

होता एक प्रसन्न है,
बना एक को खिन्न।
हों समान उर किंतु दुख,
सुख होते हैं भिन्न।

समझ बूझ होते हुए,
बनें किस लिए काठ।
पड़े प्रपंचों में करें,
प्रेम मंत्र का पाठ।

हल चल है हिय में हुई,
अति चंचल है चित्त।
मुँह की रोटी छिन गयी,
लुटा हमारा वित्त।

उससे क्या होगा अगर,
उर कालिमा भगीन।
जिस जनता की रगों में,
जीवन ज्योति जगीन।

जातिपतन अवलोक क्यों,
उसको होगी आँख।
जाग गये खुल भी नहीं,
पायी जिसकी आँख।

है निज हित ही देखता,
सारा जन समुदाय।
स्वार्थी जन है न्यायको,
भी कहता अन्याय।

है धाता उद्योग का,
फल सारा धनधाम।
है जीवन के वास्ते,
जड़ी सजीन काम।

इसे जानता समझता,
है सारा संसार।
किस प्राणीपर है नहीं,
निज भोजन का भार।

वीर भोग्या धरा है,
है यह कथन यथार्थ।
प्रबल पराक्रम किये है,
मिलता कलित पदार्थ।

विद्याबल वर बुद्धि बल,
विभुता बल का त्रास।
रहा कँपाता धरा को,
कर भव का उपहास।

किसे प्रताड़ित की नहीं,
प्रबल जनों की पंक्ति।
किसे अशक्त न कर सकी,
शक्तिमान की शक्ति।

काँपा कब उसका हृदय।
सुनकर हाहाकार,
कब आक्रामक को हुआ,
अत्याचार विचार।

दशकाल अधिकार बल ,
मिले संघटित जाति ।
कब न उपद्रव कर सकी ,
की न कहाँ पर क्रान्ति ।

तन-धन स्वजन स्वमित्र से,
हुए बुरा व्यवहार ।
होता रहता है कुपित ,
जन चित बारम्बार ।

दुर्जनता का है विभव ,
खल आनन का ओप ।
है कठोर जन की कला ,
किसी कुपित का कोप ।

परम सरस है मधुर है ,
है जन अनुभवनीय ।
बहु ललामता लसित है ,
लोभ लहर रमणीय ।

मनका मोल मिले बिना ,
किसे न होगा त्तोभ ।
लालायित करता नहीं ,
किसको लालित लोभ ।

जिससे होता ही रहे ,
अन्य जनों को त्तोभ ।
है आनन्दित कर नहीं ,
निन्दित है वह लोभ ।

कहें तो कहें क्या अहह,
सपना है संसार।
क्या जीवन का लोभ है,
है जीवन दिन चार।

उसकी महिमा कथन में,
मनुज कब रहा मौन।
भव माया के मोह में,
नहीं फँस सका कौन।

यथा शक्ति कोई नहीं,
उससे करता द्रोह।
करता रहता है मनुज,
स्वपरिवार का मोह।

हित के लिए हितू बना,
कब करके न सबील।
हृदय मोह है विलसता,
आँखों में बन शील।

उनका मोह अपूर्व है,
है दिवि उनकी देह।
जो करते हैं जगत के,
प्राणि मात्र से स्नेह।

अहंकार होता न तो,
हरता कौन विकार।
कर रग रग के रुधिर में,
रुचिर ओज सञ्चार।

सजीवता ओजस्विता,
आवश्यक सत्कर्म।
क्यों पाते जो समझता,
अहंकार नहिं मर्म।

निन्दा करके और की,
निन्दित कभी बनो न।
रहो साफ सुथरे मगर,
कीचड़ बीच सनो न।

जिसका मानस है बना,
रहता हित का मंच।
उसे प्रवञ्चित कर नहीं—
सकता कभी प्रपञ्च।

उन्हें समझ है ही नहीं,
जिन्हें है न यह ज्ञात।
मानी जाती है नहीं,
जन मन मानी बात।

नहीं किसी को मारना,
कभी न करें कबूल।
फूल फेंक मारें अगर,
तो भी होगी भूल।

उसमें होती है लगी,
कपट की बुरी छूत।
अच्छी होती है नहीं,
कूट नीति करतूत

उस अचिंत्य प्रभु की कृपा,
हुई नहीं भरपूर।
चिंतित चित, चिंता कहो!
कैसे होवे दूर।

बन न सका बे दर्द मैं,
आहें भर-भर सर्द।
कहूँ तो कहूँ किस तरह,
अपने को मैं मर्द।

बनना अच्छा है नहीं,
बातें बना बनो न।
महिमा होती तो भला,
गौरव मिलता क्यों न?

कैसे तेजः पुञ्ज से,
भव होता भरपूर।
उगते जो न तमारि कर,
तमा तिमिर को दूर।

कैसे होती दूर तो,
तिमिर आवरित रात।
प्रभा निकेतन प्रभा कर,
करता जो न प्रभात।

रात ओस आँसू बहा,
प्रिय निमित्त रोती न।
सविता में तम ध्वंसिनी,
पविता यदि होती न।

प्रीति लालिमा से लसित,
यदि उसको पाता न।
ऊषा को तेजस्विनी,
सूर तो बनाता न।

प्राणिमात्र पाकर उसे,
क्यों न करेंगे प्यार।
अवनी सारी उपज है,
रवि कर का उपहार।

तो न विहरते दीखते,
नभ में वारिद व्यूह।
वारि को बनाता न जो,
रविकर वाष्प समूह।

घटना बढ़ना प्रति दिवस,
का है कुत्सित अंक।
कलित कला से रहित हो,
है सकलंक मयंक।

गुण देखें बनती रहे,
दृष्टि सदा क्यों बंक।
तमस्विनी को कर सका,
तेजस्विनी मयंक।

हँसता रहता है सदा,
दिखलाता है शान्त।
तीक्ष्ण तेज रविकिरण को,
करता है शशि कान्त।

सुन मयंक अपवाद क्यों,
सत्य रहेगा मौन।
वसुधा पर है सर्वदा,
सुधा बरसता कौन ?

तो पूनों की रात क्यों,
पाती आदर नाम।
पहन चाँदनी पट अगर,
बनी चन्द्र बदनाम।

लोक मोहनी कान्ति से,
है उसकी उत्पत्ति।
चन्द्र वदन है चाँदनी,
चारु सदन सम्पत्ति।

प्रजा पुंज अलिवृन्द को,
करे सदैव सओज।
सुन्दर शासन बन सदा,
सरसित लसित सरोज।

कान सुन न पाये कभी,
लान तान की तान।
मन को करना चाहिये,
मानवता का मान।

बहु बाधाओं के हुए,
बिध जाता है मर्म।
हो जाता है धर्मच्युत,
प्राणी किये कुकर्म।

लालायित जन के लिए,
है ललामता ओक।
सकल लोक उपकार है,
कल निकेत आलोक।

बहुत दब चुका अब मुझे,
दाब दे दबाये न।
कुसमायुध आयुध प्रभो,
आयुध रह जाये न।

मम सिर पर होगा नहीं,
वह अब कभी सवार।
अब न सहूँगा रार कर,
कभी मार की मार।

उसकी चर्चा ही हुए,
चित नहिं पाता चैन।
आँख मैन की अब कभी,
देख सकूँगा मैं न।

सँग रहना है चाहता,
अब होवेगा सो न।
झख मारेगा पास मन,
आ झख केतन क्यों न।

सुरुचि साथ देती नहीं,
हुए कुरुचि का सङ्ग।
अंग अंग में रम दिखाता-
है रङ्ग अनङ्ग।

कौन नहीं होता दुखित,
खुले दुरित का द्वार।
अवलोकन कर दर्प कं—
दर्प का दुराचार।

निराधार का मिल सका,
कब किसको आधार।
इस भव पारावार का,
किसने पाया पार।

सिर पर भूत सवार है,
नहिं रह जाता मौन।
मम कुत्सित करतूत को,
पूत करेगा कौन।

आजीवन करते रहें,
लोक लाभ का काम।
मद विहीन हो लें सदा,
मदन कदन का नाम।

शिव शिवता ही कर सकी,
जिस को सदा सनाथ।
उसके सँग क्यों रह सके-
गा, रिपु गिरजानाथ।

करती रहती है सदा,
उसके हित की पूर्ति।
जन मानस को मोहती,
है मनसिज की मूर्ति।

मानस कभी न बन सका ,
पाप पुंज का ओक ।
हुआ प्रवंचित पंच शर ,
का प्रपंच अवलोक ।

संसृति सृजन समस्त है ,
संस्कृति उसके साथ ।
उन्नति अवनति, गति प्रगति,
का है पति रतिनाथ ।

दुख है तिमिर समूह, सुख-,
है अनुपम आलोक ।
होता सुख दुख है सदा ,
गुण अवगुण अवलोक ।

आँखें खुलती हैं नहीं ,
बिना हुए परिताप ।
पछता पाता है नहीं ,
पापी करके पाप ।

दुर्जनता का है विभव ,
खल आनन का ओप ।
है कठोर जनकी कला ,
किसी कुपित का कोप ।

है विभूति विकराल तन ,
अनुचित कर्म कृतान्त ।
है विचित्रता से भरित ,
क्रोध विविध वृत्तान्त ।

कुल परिवार समाज के,
शासन का है अंग।
विविध क्रियामें कोपका,
है यह कान्त प्रसंग।

रमणी की रमणीयता,
हाव भाव मुसकान।
उसका कलित कटाक्ष है,
कामदेव का बान।

चन्द विनिन्दित वदन का,
अति अनुपम अवदात।
गोल कपोल ललामता,
लोल विलोचन ख्यात।

कभी कभी उसके कलित,
कंठ का कलालाप।
कामदेव का ही कहा-
ता, है कार्यकलाप।

किन्तु मान्य है शक्तिका,
संयत उचित प्रयोग।
बन जाता है अन्यथा,
वह कश्चित अभियोग।

मोहित होना सुमुखिपर,
है स्वाभाविक बात।
उल्लंघन मर्याद है,
शुचि रुचिपर पविपात।

किसी सुजन पर देखकर,
दुर्जन अत्याचार।
प्रकृति उसे सहती नहीं,
करती है प्रतिकार।

पढ़े लिखे चालाक बन-
कर चलते हैं चाल।
खींचा करते हैं बड़े,
लोग बाल की खाल।

चुप रहते हैं ना समझ,
भी न बन समझदार।
हो अपने उद्योग में,
क्यों नहिं उनकी हार।

मनुज मनुज है पर मनुज,
में ही ऐसे वीर।
हैं हो गये जो बन सके,
रणमें वर रणधीर।

यह है दैवी शक्ति जो,
सब में होती है न।
यदि ऐसा होता न तो
उसकी होती जै न।

देख धनिक धन हीन को,
रूप कुरूप विलोक।
सुखी, दुखी, कंगाल को,
राजा को. अवलोक।

नास्तिक कहता है अगर ,
पक्षपात से हीन ।
ईश्वर होता, भिन्नता ,
ऐसी दिखलाती न ।

रविको देखो, शशिसहित,
देखो तारक पंक्ति ।
मन देखो, भव प्राणियों ,
की देखो अनुरक्ति ।

हो जायेगा उस समय ,
विचित्रता का ज्ञान ।
रह जायेगी नास्तिकों-
की तब नास्तिकता न ।

मनुज प्रकृति अनुसार है ,
होता कार्य कलाप ।
वही कराती पुण्य है ,
वही कराती पाप ।

करते देखे गये हैं ,
भले बुरे नर काम ।
दोनों उसकी प्रकृतिके ,
होते हैं परिणाम ।

पात्र भेद से है क्रिया ,
होती रहती भिन्न ।
किन्तु प्रकृति सब काल ही,
होती है उद्‌भिन्न ।

धीरे धीरे बढ़ तथा,
हुए अपर संसर्ग।
पढ़ लिखकर बहु ग्रंथके,
पढ़े अनेकों सर्ग।

होती रहती है सदा,
विविध ज्ञान की वृद्धि।
किन्तु प्रकृति से ही हुआ,
करती है कृति सिद्धि।

माता तथा पितादि हैं,
मानव प्रकृति विभूति।
होती है उसमें अधिक,
उनकी ही अनुभूति।

ज्यों-ज्यों बढ़ते हैं चतुर,
बन पाता है चित्त।
बँहकाता है बेतरह,
उनको लालच वित्त।

दुनिया को वह देखता,
है बन दुनियादार।
उसके तन के साथ है,
लग जाता हित तार।

सत्य बात यह है मनुज,
सुख दुख का है पात्र।
है उसके ही हाथ में,
उसका सारा गात्र।

नहीं हिचकता जी कभी ,
करते मकर फरेब ।
लाग भले ही क्यों नहीं ,
उनको समझें ऐब ।

आज भी वही दशा है ,
है वैसी ही क्रान्ति ।
दिखलायी पड़ती नहीं ,
कहीं वास्तविक शान्ति ।

नहीं परस्पर है कहीं ,
सबका सबसे प्यार ।
सब की ग्रीवा मध्य है ,
पड़ा स्वार्थ का हार ।

सभी सुखी हैं औ सभी ,
करते हैं सत्कर्म ।
धर्म विवेक हुए न है ,
होता अधिक अधर्म ।

जिसका जितना ज्ञान है,
वह है उतना मान्य ।
अधिक मान्यको ही मिला,
करता है प्राधान्य ।

राजे महराजे तथा ,
बड़े बड़े धनमान ।
लसे प्रतिष्ठित पदों पर ,
बन विज्ञता निधान ।

कहाँ कब न आद्रित हुए,
कहाँ न पाता मान।
यदि है वास्तव और है,
यह अनुपम अनुमान।

हैं कुछ ऐसे भूप जो,
थे साधारण लोग।
किन्तु बने वे नृपति, कर,
यथा समय उद्योग।

तो होता है सिद्ध यह,
है वीरता प्रधान।
किन्तु योग्यता भी बनी,
रही सदैव महान।

भरता है बहु भूति से,
हरता है पर पीर।
नाना विरुदावलि वलित,
वसुन्धरा का वीर।

सज्जन जन की सेविका,
है समाज सम्पत्ति।
किसी वीर की वीरता,
है वैरिता विपत्ति।

छिदता रहता गात है,
नहिं केवल ही पैर।
परम कंटकित बैर है,
किसी वीर का वैर।

उसका सरस सनेह है,
सुखद रहित अहमेव।
किसी वीर का बर विरद,
है वर दाता देव।

है कितना वह मुग्ध कर,
कितना रस अवदात।
है बराबरी मधुरता,
वीर जनों को ज्ञात।

धीर धुरंधर बन किये,
लोकोत्तर तदबीर।
बसुधा धिप हैं हो गये,
कई साहसो वीर।

भरी सरसता मंजुता,
से है उनकी प्रीति।
कान्त कला से आकलित,
है वीरों की कीर्ति।

उनको है अवमानना,
अर्थ अधिकतर ज्ञात।
बहँके भी नहिं कर सके,
वीर बदी की बात।

ख्यात सिकन्दर आदि हैं,
कुछ ऐसे अवनीश।
अपने बल से जो बने,
बहु देशों के ईश।

जो कल कौशल कुशल थे,
देश काल अवलोक।
कर समाज को हस्तगत,
वही बने नृप ओक।

यदि बाधा बाधक न हो,
विधि का हो न प्रकोप।
राजवंश का तो तुरत,
होता कभी न लोप।

राजवंश में उपज यदि,
है योग्यता अभाव।
मिल जाता है धूल में,
तो उसका सब चाव।

उत्तम कुल में उपज यदि,
उत्तमता पायी न।
भलमनसाहत जो उसे,
भूले भी भायी न।

तो साधारण जनों में,
उनमें क्या है भेद।
क्यों न देख उनकी दशा,
सब को होता खेद।

है प्रधानता योग्यता-
द्वारा होती प्राप्त।
मिले योग्यता ही मनुज,
बन पाता है आप्त।

दिखलाती है योग्यता,
सब में नहीं समान।
इसमें भी है भिन्नता,
का होता अनुमान।

यही भिन्नता है किया,
करती सब में भेद।
कोई होता अज्ञ है,
कोई ज्ञाता वेद।

प्रकृति बनाती है किसी,
को अजीब मतिमान।
करती रहती है किसी,
को नितान्त नादान।

पृथ्वी तलमें हैं लसे,
जितने नाना देश।
भिन्न भिन्न हैं सबों के,
रूप रंग औ वेश।

मिलेगा सभी के गले,
मध्य स्वार्थ व्यवहार।
कोई सह न सका कभी,
पर का दुर्व्यवहार।

जाति देश दुर्दशा को,
देख सकेगा कौन।
सुन कंपित कर गालियाँ,
कौन रहेगा मौन।

मानवता को देखकर,
लगती अतिशय आँच।
कुढ़कर किसका जी नहीं,
तुरत उठगा नाँच।

किसी देश का प्रान्त का,
प्राणी पढ़े कुपाठ।
हाथ पाँव होते नहीं,
बन पायेगा काठ।

सभी प्राणियोंमें प्रकृति,
के सारे गुण दोष।
होते हैं पर सम नहीं,
होते मानस कोष।

होता है कोई अधिक,
क्रोधी कोई न्यून।
रक्षा करता है कोई,
कोई करता खून।

हैं कटुवादी बहुत से,
मृदुवादी कम हैं न।
कुछ करते बेचैन हैं,
कुछ देते हैं चैन।

कम न खिजाते हैं बहुत,
से हर करके वित्त।
मोद दान करके सदा,
प्रमुदित करते चित्त।

डाँट डपट कर डराते,
हैं बहुतेरे लोग।
सुखी बनाते हैं बहुत,
से पाकर संयोग।

होता है नर का सृजन,
देश काल अनुसार।
विद्या शिक्षा जाति कुल,
तथा मिले अधिकार।

एक देश ही नहिं धरा–
में हैं कितने देश।
उनके हैं भिन्नाचरण,
भिन्न - भिन्न हैं वेश।

कितने हैं गिरि आवरित,
कितने सिंधु समीप।
कितने अनुपम देश हैं,
तथा द्वीप उपद्वीप।

किन्तु स्वार्थ साधन सभी,
का है प्रिय उद्देश्य।
बहु लोगों की प्रकृति का,
है यह प्रिय उपदेश।

धर कर नाना रूप यह,
होता है व्यवहार।
करते हैं कुछ सुजन जन,
पर हित को भी प्यार।

आँख बन्द कर, स्वार्थ है,
साधन करता लोक।
यह ऐसा है तिमिर, है-
जिसमें कम आलोक।

भूखे दीन दरिद्र से,
रहित कौन है देश।
कहाँ प्रशंसित है नहीं,
परुपकार सन्देश।

यदि मानव तन मध्य है,
दयालुता का वास।
तो होगा किस धर्म में,
उसका नहीं बिकास।

दयालुता है दीन के,
लिए स्वर्ग सुख भोग।
उसके हित के लिए—
है सर्वोत्तम संयोग।

निर्धन प्राणी अधिक हैं,
थोड़े हैं धनमान।
अविद्वान हैं अधिक हैं,
इने गिने विद्वान।

ऐसे सज्जन अल्प हैं,
जिन्हें है न यह रोग।
वे समधिक हैं प्रिय जिन्हें,
हैं ढकोसले ढोंग।

क्यों धनमान सदा फले,
फूले पा प्रिय ओक।
क्यों कलपे कंगाल ही,
नित कपाल को ठोंक ?

बचो कहर से दो बला,
में न किसी को डाल।
बाल बाल बिन जायंगे,
खिंच जायेगी खाल।

सुरुचि हृदय में है न तो,
कुमति वितान तनो न।
यदि न दया कर सको तो,
तुम निर्दयी बनो न।

कटु बातें कहकर सके,
जो न कलेजे छील।
कहते हैं ऐसे सुजन,
को ही लोग सुशील।

बनते रहते हैं बँहक,
कर जो प्रायः बीस।
दांत पीस के ही सके,
हैं औरों को पीस।

बक बक बातें बुरी जो,
करते हैं उत्पात।
उन्हें भला कैसे सदा,
नहीं लगेगी लात।

बिना तजे दुर्वृत्त औ,
लाभ किये सद्‌वृत्त।
होयेगा निश्चिन्त क्यों,
कोई चिन्तित चित्त।

वीर भाग्या धरा है,
है यह कथन यथार्थ।
प्रबल पराक्रम किये है,
मिलता कलित पदार्थ।

भोजन ही है लोक के,
जीवन का आधार।
इसीलिए है जगत में,
उसका समधिक प्यार।

है धाता उद्योग का,
फल सारा धन धाम।
है जीवन के वास्ते,
जड़ी सजीवन काम।

जाति पतन अवलोक क्यों,
उसको होगी आँख।
जाग गये भी खुल नहीं,
पायी जिसकी आँख।

उससे क्या होगा अगर,
उर क़ालिमा भगी न।
जिस जनता की रगों में,
जीवन ज्योति जगी न।

होती रहती है उसी ,
करतूती की वृद्धि ।
कार्य कुशलता में मिली ,
जिसको सतत प्रसिद्धि ।

हो जाती है चित्त की ,
कामुकता की पूर्ति ।
अवलोकन कर राम सी ,
लोक मोहिनी मूर्ति ।

सफल न वह होगा बनी ,
जिसकी सुमति सगी न ।
लग जाने की काम में ,
जिसको लगन लगी न ।

किन्तु बुद्धि विद्या निलय,
ही पासके विभूति ।
सुलझाती है उलझनों-
को जिनकी अनुभूति ।

वर-वधू

समझ सका जो प्रेमपथ ,
पथिकों का अधिकार ।
वह पति पति है जिसे है,
पत्नी सच्चा प्यार

बहे विवाहित हृदय में,
पावन प्रेम प्रवाह ।
चितमें संचित नित रहे ,
हित उपचित उत्साह ।

बनिता सुखपर दृग रहे ,
कभी उसे दुख दे न ।
कर वैदिक विधिसे वरण,
वर वरता भूले न ।

क्यों न बनायेगी उसे ,
वह स्वकंठ का हार ।
जिस पत्नीको है अधिक ,
पातिव्रत का प्यार ।

देवी उसको मानते ,
हैं महिके मतिमान ।
जो प्रियतम को मानती ,
है देवता समान ।

है वह शुचि रुचि सहचरी,
है वह परम उदार।
जी से प्यारा है जिसे,
प्रिय पति का परिवार।

सुप्रकृति सुवचन सुमतिरति,
सुकृति सुगति सुविचार।
है कुलीन कामिनी के,
जीवन के आधार।

जीवन धनपर जो सती,
सकी स्वजीवन वार।
है असार संसार में,
उसका जीवन सार।

ललना लोचन में बसं,
कर उरपर अधिकार।
पले प्यार की गोद में,
पति बन ग्रीवा हार।

सदा विपुल पुलकित रहे,
कर अरुचिर रुचि अन्त।
कभी अकान्त बने नहीं,
कान्त कहा कर कन्त।

चाव भरे चितवत खरे,
किये सरस दृग कोर।
जय दुलहिन श्रीराधिका,
दूलह नन्द किशोर।

शुचि विचार वर विधि वलित,
बने यह रुचिर व्याह।
कुलाचार में भी सरुचि,
होवे सुरुचि निबाह।

रख अविचल दृग सामने,
द्विजकुल वरद महान।
चिरजीवी हो वर बधू,
प्रेम सुधा कर पान।

विघ्न रहित वसुधा बने,
घर घर बढ़े उछाह।
रहें बहु सुखित वर वधू,
हो विनोद मय व्याह।

उमग उमग घर घर बहे,
परम प्रमोद प्रवाह।
मोदक प्रिय होकर मुदित,
मुदमय करें विवाह।

कुशलमयी हो मेदिनी,
हो मङ्गलमय राह।
करें वरद वर वर वधू,
का विनोदमय व्याह।

प्रकीर्णक

तालू से पल-पल किया,
करती कौन कलोल।
जो रसना होती नहीं,
मुँह क्यों सकता बोल ?

बनबन विविधविलासकी,
विधिवत वर आवास।
सूचित करती है सरस,
रसना रस की प्यास।

देश विदेश प्रवास में,
अनुचित हुए प्रयास।
नीरस को भी सरस है,
करती रसना प्यास।

उनको आलम्बन बना,
करते हैं चित चाव।
है भावुकता से भरित,
रसना नाना भाव।

जो प्यारे हैं क्यों कहें,
उनको वचन कठोर।
कोई भी चित चोर को,
नहीं समझता चोर।

अहह रह गया चित्त में,
नहिं सज्जनता लेश।
जब मति मारी गयी तब,
क्यों न कुमति दे क्लेश।

संकट से करके समर,
सुख पाता है सूर।
कल मिलता है चित्त को,
हुए विकलता दूर।

बरबादी क्या, वह चला,
करता है वह चाल।
बढ़ता रहता है जगत,
का जिससे जञ्जाल।

वह होगा कौतुक नहीं,
कर बैठे वह जो न।
क्रूर क्रूर है बाद कर,
बदी करेगा क्यों न?

क्यों धनमान सदा फले,
फूले पा प्रिय ओक?
क्यों कलपे कंगाल नित,
निज कपाल को ठोंक।

छेदें, बेधें छुरी से,
काटें क्यों सत पाक।
कतर कतर कर कतरनी,
से न उतारें नाक।

पूरा निश्चित है नहीं,
सुखदुख का परिपाक।
नथ नथुनी हित विद्ध हो,
हुई अलंकृत नाक।

छिनक छिनक कर धूल में,
हम न मिलायें धाक।
ऐंठ दिखाने के लिए,
कभी न ऐंठे नाक।

भावों को समझा करें,
सदा पेट में पैठ।
कान ऐंठने से कभी,
दूर न होगी ऐंठ।

प्रायः होता है दुखद,
भव कठोर व्यवहार।
सहती पीठ कठोरता,
है कोड़ों की मार।

दुर्जन बनकर यदि सबल,
करता है उत्पात।
विविध दण्डका तो हुआ,
करता है आघात।

सबको धन की प्यास है,
है उन्नति की चाह।
सभी ताकते हैं बड़ा।
बन जाने की राह।

किन्तु बुद्धि विद्या निलय,
ही पासके विभूति।
सुलझाती है उलझनों,
को जिनकी अनुभूति।

सब प्रकार की दिव्यता,
का है जिसको ज्ञान।
असम साहसिक बन सका,
जो कर साहस मान।

जो बल बुद्धि विवेक की,
है वसुधा में मूर्ति।
उसके सकल अभाव को,
भव करता है पूर्ति।

है मृदंग बजता कभी,
उर में भरे उमंग।
तबले की सुन कर ठनक,
कौन न होगा दंग।

मनमानपन धूम है,
कौन देखता काम।
प्रायः होता है नहीं,
गुणानुसारी नाम।

प्राणिमात्र को है पठन,
पाठन का अधिकार।
सबका सबसे है हुआ,
करता सद् व्यवहार।

कर सच्ची साधना जन ,
लेता रहे सबाब ।
करे प्रफुल्लित लोक को ,
बन उत्फुल्ल गुलाब ।

अकान्त करतूत

कैकेयी कुप्रपंच से,
त्रेता युग में आह।
गरल आकलित हुआ था,
अनुपम सुधा प्रवाह।

रामराज्य संवाद सुन,
समुल्लसित था लोक।
बहु सज्जित बन गये थे,
साधारण तम ओक।

गान वाद्य का मंच था,
जनता का संसर्ग।
हो लोकोत्तर स्वर लसित,
अवध बना था स्वर्ग।

सदन सदन हो गया था,
प्राय: कीर्तन धाम।
जिसे बनाता रम्यतम,
रहा राम का नाम।

हाट बाट चौरहों का,
रहा निराला ठाट।
मानों मोहकता उन्हीं—
ने ही ली थी छाँट।

ध्वजा पताकायें रहीं,
करती पटुता पूर्ति।
बन-बन करके दिव्य से,
दिव्य भाव की मूर्ति।

पर कैकेयी शीश पर,
ही सवार था भूत।
उसका मन ही बना था,
परम कुटिल करतूत।

उसका ही परिणाम था,
रामचन्द्र बनवास।
दशरथ जैसे नृपति का,
होना सत्यानाश।

लोक पूजिता वंदिता,
लसिता कीर्ति कलाप।
सीता का अपहरण था,
रावण मन का पाप।

हुआ इसी से स्वर्गसम,
स्वर्ग पुरी का ध्वंस।
उस लंका का जो रही,
अवनीतल अवतंस।

इस कुकर्म से ही हुआ,
निहत वीर घननाद।
कुंभकरन मारा गया,
वंश हुआ बर्बाद।

सुर पुर को करता रहा,
जो सब दिन सातंक।
तेजस्विता निकेत था,
जिसका दर्प मयंक।

उसे भी निहत कर गया,
उसका मानस पाप।
धूल में मिला वह रहा,
जिसका प्रबल प्रताप।

पढ़ा जाय विधि सहितजो,
अवध पुरी वृत्तान्त।
तो समझेंगे गृह कलह,
है सर्वथा अकान्त।

उर कम्पित कर है करे,
जो अवनीश अधर्म।
महा शक्ति सम्पन्न का।
है अति निंद्य कुकर्म।

भली नहीं है नींचता,
भला न है पाखण्ड।
पापी पाता है सदा,
निज पापों का दण्ड।

विश्व प्रपञ्च

बहु विकराल प्रकोप की ,
विकरालता विलोक ।
कब बसुधा न व्यथित हुई,
हुए विकम्पित ओक ।

महा भयंकर कोप के ,
ही सब थे परिणाम ।
वसुधा में जितने हुए ,
बड़े बड़े संग्राम ।

अत्याचारी हैं किया ,
करते अत्याचार ।
दुर्बल पर है सबल का ।
होता सदा प्रहार ।

अनुचित करते हैं नहीं ,
डरते प्रायः नोच ।
वे उछालते ही रहे ,
नित औरों पर कीच ।

काम क्रोध के साथ लो ,
लोभ मोह हंकार ।
इन पाँचों से है अधिक ,
मानव मन का प्यार ।

महाभारत

देख भाल कर वह सका,
अपने को न सँभाल।
हुआ महाभारत समर,
भारत हित का काल।

समर महाभारत हुआ,
है अनर्थ का मूल।
है प्रभाव उसका हुआ,
उन्नति के प्रतिकूल।

जो दुर्योधन मन नहीं,
बनता पातक धाम।
तो न महाभारत सदृश,
हो पाता संग्राम।

मान महत्ता रह सकी,
उसमें नहीं समर्थ।
पद मर्यादा को लगे,
ठोकर हुआ अनर्थ।

गुरु का प्राण लिया गया,
निज बाणों से बेध।
विविध छल कपट क्रियासे,
लगा तिमिर में सेंध।

उनसे हुए कुकर्म, जो,
थे मर्यादा शील।
किन्तु कार्य की सिद्धि में,
दी न उन्होंने ढील।

समर महाभारत रहा,
अत्याचारागार।
पापाचार कठोर गिरि,
कटुता पारावार।

यद्यपि थे इस युद्ध में,
बड़े बड़े धर्मज्ञ।
भीष्म पितामह युधिष्ठिर,
जैसे सत्कर्म्मज्ञ।

कृष्णचन्द्र जैसे कुशल,
अनुपम नीति निधान।
वृद्ध वयस्क गरिष्ठ गुरु,
द्रोणाचार्य समान।

अर्जुन जैसे शान्त प्रिय,
धीर वीर गंभीर।
किन्तु नष्ट नहिं हो सकी,
उठी ध्वंस की पीर।

समर मेदिनी मध्य है,
अहमहमिकता सार।
जैसे हो वैसे विजय,
पाना है प्रतिकार।

आँख खोलकर हम लखें,
यदि मानव इतिहास।
मारकाट ही मिलेगा,
तो करता उपहास।

इस रण में मारे गये,
धरती के रणधीर।
चुने हुए सब सूरमें,
बिछे हुए वर वीर।

इने गिने जो थे बचे,
उनमें भी कुछ लोग।
आत्मघात कर मर गये,
था ऐसा संयोग।

भारत ही है आर्यजन,
का प्रधान आवास।
कहता है यह अवनितल,
का सारा इतिहास।

हुए महाभारत समर,
वही हुआ बलहीन।
जैसी उसमें चाहिये,
वैसी शक्ति रही न।

कलह फूट की भी हुई,
धीरे धीरे वृद्धि।
प्रान्त प्रान्त में हो गयी।
इसकी अधिक प्रसिद्धि।

अतः विदेशी जातियों,
के आक्रमण अनेक।
बार बार होने लगे,
बिना विचार विवेक।

पतन पराजय ही हुआ,
था इसका परिणाम।
आर्य जाति का बना था,
पराधीनता धाम।

कुछ अन्तर है आज भी,
हो पाया नहिं आह।
शक्तिमान जन हैं बने,
अब भी वे परवाह।

कारण इसका है वही,
मानव मन का भाव।
कौन दूर कर सकेगा,
दुर्जन चित का चाव।

अहंकार ने ही मचा-
या है हाहाकार।
मदांधता ने ही किया,
है बहु अत्याचार।

तमोगुण रजोगुण सके,
हैं कर सकल कुकर्म।
कैसे वे पाते समझ,
धर्म कर्म का मर्म।

भारत-भूमि

परम अलौकिक भाव हैं,
लोकोत्तर अनुभूति।
भावुकता से है भरित,
भारत भूतल भूति।

वह निधि किसमें है बने,
जो महान निधि मान।
भारत ही की भूमि है,
भारत भूमि समान।

सुर सरि सी सरि है कहाँ,
मेरु सुमेरु समान।
जन्म-भूमि सी भू नहीं,
भूमण्डल में आन।

प्रतिदिन पूजें भाव से,
चढ़ा भक्ति के फूल।
नहीं जन्म भर हम सकें,
जन्म-भूमि को भूल।

पग सेवा है जननि की,
जग जीवन का सार।
मिले राजपद भी रहे,
जन्म भूमि रज प्यार।

आजीवन उसको गिनें,
सकल अवनि सिर मौर।
जन्म-भूमि जलजात के,
बने रहें जन भौंर।

कौन नहीं है पूजता,
कर गौरव गुण गान।
जननी जननी-जनक की,
जन्म-भूमि को जान।

उपजाती है फूल फल,
जन्म भूमि की खेह।
सुख संचन रत छवि सदन,
दे कंचन सी देह।

उसके हित में ही लगे,
है जिससे वह जात।
जन्म सफल हो वार कर,
जन्म-भूमि पर गात।

योगी बन उसके लिए,
हम साधें सब योग।
सब भोगों से हैं भले,
जन्म भूमि के भोग।

फलद कल्पतरु तुल्य हैं,
सारे विटप बबूल।
हरिपद रज सी पूत है,
जन्म धरा की धूल।

जन्म भूमि में हैं सकल,
सुख सुषमा समवेत।
अनुपम रत्न समेत है,
मानव रत्न निकेत।

कवि-कीर्ति

बरस बरस कर रुचिर रस,
हरे सरसता प्यास।
असरस चित को अति सरस,
करे सरस पद न्यास।

भावुक जन के भाल पर,
हो भावुकता खौर।
अरसिक पाकर रसिकता,
बने रसिक सिर मौर।

मिले मधुर स्वर्गीय स्वर,
हों स्वर सकल रसाल।
व्यंजन में वर व्यंजना,
हो व्यंजित सब काल।

उक्ति अलौकिकता लहे,
मिले अलौकिक ओक।
करे समालोकित उसे,
अलंकार आलोक।

कलित भाव से ललित हो,
पा रुचि ललित नितान्त।
कान्त करे कवितावली,
कविता कामिनि कान्त।

रचती है कविता सुधा,
सुधा सिक्त अवलेह।
लहता है रस सिद्ध कवि,
अजर अमर यशदेह।

चिरजीवी हैं सुकवि जन,
सब रस सिद्ध समान।
उक्ति सजीवन जड़ी को,
कर सजीवता दान।

अमल धवल आनन्दमय,
सुधा सिता सुमिलाप।
है कमनीय मयंक सम,
कवि कुल कीर्ति कलाप।

गौरव केतन से लसित,
अनुपम रत्न उपेत।
अमर निकेतन तुल्य है,
कवि कुल कीर्ति निकेत।

मानस अभिनन्दन अमर,
नन्दन बन वर कुंज।
है पावन प्रति पत्ति मय,
कवि पुंगव यश पुंज।

जब तक कवि कुल कल्पना,
करे कलित आलाप।
अवनि लसित तबतक रहे,
कवि का कीर्ति कलाप।

सुरसरि धारा सी सरस,
पूत परम रमणीय।
है कवियों की कल्पना,
कल्पलता कमनीय।

——